बारहवाँ अध्याय
शिरडी का काया-कल्प

श्री साई महाराज के आगमन और निवास से शिरडी गाँव एक तिर्थक्षेत्र के रूप में परिवर्तित हो गया। हजारों लोंग श्री बाबा के दर्शनार्थ तथा ऊद-प्रसाद प्राप्त करने के उद्देश्य से वहाँ नित्य एकत्रित होने लगे। कुछ ही दिनों के बाद भक्तगणों ने वहाँ रामनवमी का उत्सव मनाना आरम्भ किया। कोपरगाँव में गुंड नामक एक सर्कल इन्स्पेक्टर श्री बाबा के भक्त थे। उनके तीन पत्नियाँ थी। तथापि वे पुत्र संतति से वंचित थे। जब श्री बाबा की कृपा से उन्हे पुत्र लाभ हुआ तो उन्होंने आनन्द मनाने के लिए शिरडी में एक वृहत् ऊरूस का आयोजन करने की इच्छा व्यक्त की। अपनी इस इच्छा को उन्होंने शिरडी के श्री तात्या पाटील और श्री माधवराव देशपांडे आदि लोगों पर सविस्तर प्रकट कर दिया। सब लोगों के सहयोग से पहले तो श्रीसाई महाराज की अनुमति के लिए प्रार्थनापत्र भेजा गया। कलेक्टर साहब के कार्यालय के एक कर्मचारी कुलकर्णी ने उर्स मनाये जाने का घोर विरोध किया। परंतु, श्री बाबा के आशीर्वाद से सब कठिनाइयाँ दुर हो गई और ऊरूस मनाने की विधिवत् आज्ञा मिल गई। श्री बाबा ने उर्स मनाने के लिए रामनवमी का दिन निश्चित् किया। स्पष्ट है इस में श्री बाबा का कोई विशिष्ट उद्देश्य था। सब भक्त लोग पूर्ण उत्साह के साथ कार्यरत हुए। शिरडी एक छोटा-सा गाँव था। वहाँ कुछ भी सरलता से प्राप्त नहीं होता था। इतना ही नही, वहाँ एकत्रित लोगों के लिए पीने का जल भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नहीं था। गाँव में केंवल दो ही कुएँ थे। उसमें से एक कुआँ तो बिल्कुल सूखा था और दूसरे का जल गंदा था। फिर भी लोगों ने हिम्मत नही हारी। तात्या पाटील ने गाँव के बाहर के

कुएँ पर मोट बँधवाई और भिश्तियों की मश्को से पानी लाकर स्थान-स्थान पर बडे बडे हौज जल से भर दिए। कुछ काम चलाऊ दूकाने बनाई गई। दामूअण्णा कासार ने संतति के लिए श्री बाबा की मनौती मानी थी। उन्होंने एक झंडा तैयार करवाया। नानासाहेब निमोणकर ने भी जरी-बूटे वाला एक और झंडा तैयार किया। लोगों ने रास्ते साफ किये। सभी स्थानों में बंदनवार लगाये गये। द्वारकामाई को तो मंदिर की भाँति फूलों की मालाओं तथा रंग-बिरंगे बंदनवारों से सजाया गया। इस प्रकार शिरडी में भक्त लोगों ने सबसे पहले सन १८९७ में अत्यन्त उत्साह के साथ ऊरूस मनाना आरंभ किया। आज भी ऊरूस प्रतिवर्ष मनाया जाता है। इस उत्सव के निमित्त एक बडा भारी मेला लगा था और रात को बडी संख्या में उपस्थित लोगों ने भजनों के जयघोष और मंजुल वाद्यों के बीच श्री साई बाबा की पालखी में आसन कर उनका जुलूस निकाला था। श्री बाबा के हिंदू भक्तों ने जब अत्यन्त हर्ष के साथ बडे पैमाने पर यह ऊरूस का समारोह मनाया तो उनके मुसलमान भक्तों में भी हर्ष एवं उत्साह की लहर दौड गई। कोन्हाला गाँव के निवासी और श्री बाबा के एक परमभक्त अमीर शक्कर दलाल ने श्री बाबा के अनुमति प्राप्त कर दूसरे ही दिन हाथों में चंदन से भरी हुई थालियाँ लेकर 'संदल' का भव्य जुलूस निकाला। इसी प्रथा के अनुसार प्रति वर्ष उत्सव मनाया जाने लगा। रामनवमी के शुभपर्व के दिन उर्स तथा दूसरे दिन 'संदल' मनाने की श्री बाबा की अनुमति से यह सिद्ध होता है कि श्री साईनाथ महाराज हिंदू-मुसलमान दोनों संप्रदायों के साथ कैसे समानता का व्यवहार किया करते थे। वे किसी भी प्रकार के समक्ष उपस्थित कर उन्हें एकता से अपने अपने धर्मो के तत्त्वों भली-भाँति पालन करना सिखाया करते थे। आगे चल कर भारतवर्ष में स्थान-स्थान पर हिंदू- मुसलमानों में दंगे फसाद हुए; परंतु शिरडी में आज तक भी दोनों संप्रदाय ''हम एक ही देह के दो हाथ है''- इस पवित्र भावना से, एकता और भ्रातृ-भाव से जीवन व्यतीत कर रहे है।

श्री बाबा के सभी भक्तों को इस वर्ष का महत्त्व ज्ञात हो चुका है; और इसी कारण यहाँ आने वाले भक्तों की संख्या प्रति वर्ष बढती ही जा रही है। पहली बार श्री तात्या पाटीलने बहुत अच्छा प्रबन्ध किया था। राधाकृष्णमाई ने भोजन की व्यवस्था संभाली थी। उसने श्री बाबा के नित्य बैठने के स्थान, द्वारकामाई की गोवर से लिपाई-पुताई कर उस साफ-सुथरा किया था। श्री बाबा की सदैव प्रज्वलित धूनी के कारण ,द्वारकामाई की दीवारें काली हो चुकी थी। एक रात को जब श्री बाबा चावडी में शयन के लिए गये थे तो राधाकृष्णमाई ने उनका सारा सामान बाहर निकाल कर अत्यन्त तत्परता से द्वारकामाई को साफ सुथरा करने का कार्य पूर्ण किया था।

किसी भी उत्सव के अवसर पर मुक्त-हस्त से स्वयं दान-धर्म करना तथा दीन निर्धनों को पेट भर अन्न खिलाना यह श्री बाबा का विशिष्ट गुण था और इससे भली प्रकार परिचित होने के कारण राधाकृष्णमाई को ऐसे प्रत्येक अवसर पर बडे भारी पैमाने पर भोजन की व्यवस्था करनी पडती थी। सभी धनी-निर्धन भक्त इस कार्य में पूर्ण उत्साह के साथ राधाकृष्णमाई का हाथ बँटाते थे।

इस उत्सव ने तथा 'संदल' के कार्यक्रम ने आगे १९१२ में एक निराला ही रूप धारण किया। तब श्री दादासाहेब खापर्डे के साथ कृष्णराव भीष्म भी शिरडी आये थे। कृष्णराव के मन में यह विचार आया कि 'ऊरूस' मनाने के लिए श्री बाबा ने रामनवमी का ही दिन क्यों निश्चित किया? राम-जन्म का पावन महत्त्व लोगों के ध्यान मे आये, यही श्री बाबा का मुख्य उद्देश्य होना चाहिये यह मन मे विचार कर राम-जन्म मनाने की अपनी आंतरिक इच्छा उन्होंने अन्य भक्तों के समक्ष व्यक्त की। सभी भक्तों ने कृष्णराव की इस इच्छा का सहर्ष स्वागत किया और श्री बाबा की अनुमति प्राप्त करने के उद्देश्य से काकासाहेब महाजनी को उनके पास भेजने का निश्यय किया। श्री बाबा ने प्रसन्नतापूर्वक अनुमति दे दी। कीर्तन संबंधी जो बाधा उत्पन्न हुई

थी, वह कृष्णराव भीष्म ने दूर की। उन्होंने स्वरचित 'श्री रामजन्माख्यान' सुनाना निश्चित किया। काकासाहेब महाजनी ने हार्मोनियम पर साथ देने का वचन दिया। राधाकृष्णमाई ने घर के एक सुंदर पालना लाकर द्वारकामाई में रखा। रामजन्मोत्सव की सब तैयारी हुई। स्थान-स्थान पर बन्दनवार लगाये गये और रामजन्मोंत्सव का कार्यक्रम आरम्भ हुआ। श्री बाबा शांत मुद्रा से यह सब कुछ देख रहे थे। एक फूलो की माला उठाकर उन्होंने अपने कण्ठ में डाली और दूसरी माला भीष्म को, पहनाई जो कीर्तनिया के रूपमें वही खडे थे। राम-जन्म हुआ। 'जय-जय राम' का जयघोष सुनाई दिया और चारों दिशाओं में गुलाल उडाया गया। उसमें से थोडा-सा गुलाल श्री बाबा के नेत्रों मे चला गया। अकस्मात श्री बाबा ने एक भयंकर गर्जना की और वे परम क्रोधावस्था में जोर-जोर से चिल्लाने लगे। सारी द्वारकामाई मानो भय से काँपने लगी। समारोह में सम्मिलित हुए भक्त लोग घबराहट में इधर-उधर भागने लगे। जो भक्त सदैव श्री बाबा के निकट रहते थे, वे या जो श्री बाबा के स्वभाव से भली-भाँति परिचित थे, वे शांतिपूर्वक अपने-अपने स्थानों पर डटे रहे। श्री रामचंद्र ने अवतार के पश्चात दुष्ट रावण का संहार करने के लिए जो उग्र स्वरूप धारण किया था, उसी का मूर्तिमंत रूप उस समय श्री बाबा में दृष्टिगत हुआ। राधाकृष्णमाई इस वास्ते सहमी हुई थी कि कही श्री बाबा पालने को तोड-फोड न दें और उन्होंने काकासाहेब महाजनी को संकेत द्वारा धीरे से पालना हटाने के लिए कहा। काकासाहेब पालने की रस्सियाँ खोल ही रही थे कि श्री बाबा का क्रोध भी शांत हुआ और वे बोले-''पालना मत हटाओ, अभी उत्सव समाप्त नही हुआ।''

दूसरे दिन फिर कीर्तन हुआ और श्रीकृष्ण-जन्मोत्सव में जिस प्रकार दही की हांडी फोडकर प्रसाद के रूप में दही बाँटा जाता है। वैसे ही प्रसाद बाँटने की श्री बाबा ने आज्ञा दी। सदैव की भाँति ऊरूस भी मनाया गया। इस प्रकार ऊरूस का रामनवमी के उत्सव में रूपान्तर हुआ।

अगले वर्ष राधाकृष्णमाई ने उत्सव मनाने की पद्धति में कुछ और सुधार किए। चैत्र मास में प्रतिपदा से नाम-सप्ताह आरम्भ करने की प्रथा राधाकृष्णमाई ने आरम्भ की। उस समय सुप्रसिद्ध ''आधुनिक तुकाराम'' बालाबुवा माली ने कीर्तन किया। फिर कुछ वर्षो तक बालाबुवा सातारकर यह कार्य करते रहे। परंतु सन् १९१४ से श्री बाबाने कीर्तन का कार्यभार सदैव के लिए श्री दासगणू महाराज को सौंप दिया।

नदी के उद्गम के भाँति पैमाने पर आरम्भ हुआ यह उत्सव आगे चल कर सागर की भाँति निस्सीम और विस्तृत होता गया। असंख्य जन-समुदाय शिरडी की यात्रा करने लगा। बडे पैमाने पर अन्न-छत्र आरम्भ हुआ। शिरडी जैसे एक सर्वथा अपरिचित एवं साधारण गाँव का शिरडी संस्थान। शिरडी में अभूतपूर्व काया-कल्प हुआ। जूलूसों की भव्यता तथा सज-धज दिनों - दिन बढने लगी। अत्यन्त सुंदर 'श्यामकर्ण' नामक घोडा, सोने चाँदी से मढी हुई पालखी, सुशोभित मखमल के ध्वज आदि सभी राजोचित ठाट-बाट जूटाये गये। जुलूस के आगे-आगे श्री बाबा का अति प्रिय 'श्यामकर्ण' घोडा बडी ठनक के साथ चलने लगा। किसी सार्वभौम राजा के सदृश अटूट संपत्ति श्री बाबा चरणों में लोटती थी; परंतु इस सारी संपत्ति का उपभोग करना तो दूर, श्री बाबा प्रत्येक वस्तु को उपेक्षा की दृष्टि से ही देखते थे। अंत तक उन्होंने अपना फकीरी बाना तथा पूर्ण वैराग्य नहीं छोडा। आरंभ में तो चार-पाँच हजार भक्तों का समुदाय एकत्रित होता था; परंतु, इस बात के प्रमाण है कि आगे यह संख्या हजार तक पहूँच गई थी। पर, श्री बाबा की असीम कृपा से एक बार भी मार-पीट या झगडे की स्थिति उत्पन्न नही हुई न ही वहाँ कोई दुर्घटना हुई। जल का वहाँ अत्यन्त अभाव था और लोगों की अपार भीड शिरडी गाँव में जुडती थी, फिर भी कोई संक्रामक रोग नही फैला। यह बात भी निःसंदेह मन को चकित करनेवाली ही है।

श्री साई महाराज के भक्तों की संख्या दिनों-दिन बढती गई और

शिरडी में वास करने के लिए जो लोग आते थे, उनके ठहरने के लिए धर्मशालाएँ न होनेसे बडी असुविधा अनुभव होने लगी। यह देखकर श्री बाबा ने श्री हरि विनायक साठे के मन में एक बडी कोठी का निर्माण कराने की प्रेरणा उत्पन्न कर दी। जिस निमवृक्ष के नीचे श्री बाबा सदैव बैठा करते थे, वहाँ जमीन खाली पडी थी। वह साठे ने खरीद ली और वहाँ एक विशाल भवन का निर्माण करा दिया। श्री साठे का बनाया हुआ यह भवन 'साठे वाडा' शिरडी में श्री बाबा के दर्शनार्थ आने वाले भक्तों के लिए बहुत ही सुविधाजनक सिद्ध हुआ। इसी समय नीम-वृक्ष के इर्द-गिर्द एक चबूतरा भी बनाया गया। इसी स्थान पर श्री बाबा के गुरू की समाधि है और इस स्थान पर हर गुरूवार और शुक्र वार को लोबान जल ने से परमेश्वर प्रसन्न होता है ओर सब दु:खों का नाश कर चिरकाल तक सुख देता है। ऐसी भक्तों कि दृढ श्रद्धा है। शिरडी संस्थान ने इस धर्मशाला का अच्छा प्रबन्ध किया है। इस भवन के निर्माण के कुछ ही वर्षो के बाद बंबई के सुप्रसिद्ध सॉलीसिटर श्री काकासाहेब दीक्षित जी ने भी वहाँ एक और धर्मशाला बनवा दी। इन श्री काकासाहेब के संबंधमें यह प्रसिद्ध है की, जब वे युरोपके दौरे पर थे तो उनके पैर में कोई पिडा हुई। मातृभूमि वापस आनेपर भी पैर की पीडा दूर करने के लिए बहुत प्रयत्न किये। पर पैर की दशा में सुधार होने का कोई लक्षण दिखाई न दिया। अंत में श्री नानासाहेब चाँदोरकर ने सन् १९०९ में उन्हें श्री साई बाबा से परिचित कराया। काकासाहेब दीक्षित श्री बाबा के दर्शन से ऐसे मोहित हुए कि उन्होंने शिरडी में ही रहने का निश्चय व्यक्त किया और सन १९१० में वह वहाँ एक महान भी बनवाने लगे। जिस दिन यह कार्य आरम्भ हुआ, उसी दिन से भक्तमंडली ने हर रात को चावडी में श्री बाबा की आरती उतारने की प्रथा आरम्भ की। दीक्षित जी का यह मकान सन १९११ में रामनवमी के दिन बन कर तैयार हुआ और यह स्थान भी शिरडी आये हुए भक्त लोगों के ठहरने के लिए बहुत उपयुक्त सिद्ध हुआ था। यह भवन 'दीक्षित-वाडा' के नाम से विख्यात है।

शिरडी में जो एक और प्रसिद्ध भवन है। उसकी कहानी बहुत ही मनोरंजक और रहस्यमय है। नागपुर के लखपती साहूकार बूटीसाहेब ने असंख्य धन-राशि खर्च कर द्वारकामाई के समीप जमीन खरीद ली और श्री बाबा की अनुमति से वहाँ एक विशाल मंदिर का निर्माण कराया। पहले इसी स्थान पर श्री बाबा ने अपने हाथो से एक छोटा-सा सुंदर उद्यान तैयार किया था। श्री बुटीसाहेब की इच्छा इस मंदिर में मुरलीधर भगवान श्री कृष्ण की मूर्ति प्रतिष्ठित करने की थी। परंतु वह मूर्त न हो सकी। श्री साई महाराज ने स्वयं इस मकान में स्थायी वास करने की इच्छा प्रकट की थी और अंत में इसी मंदिर में श्री बाबा की समाधि बनाना निश्चित हुआ। श्री बुटीसाहब का यह भव्य भवन आज 'समाधिमंदिर' के नाम से प्रसिद्ध है। शिरडी के ये तीनों धर्मशालाएँ आज भी श्री बाबा की कृपा से भक्तो को आसरा देने के लिए सदैव तत्पर है।

श्री साईबाबा ने चुंबक की भाँति लोगों को अपनी ओर आकर्षित कर रखा था। श्री बाबा के मुख पर कुछ ऐसा दिव्य तेज चमकता था कि उन्होंने यदि अपने मुख से अपशब्द कहकर किसी को भगा भी दिया तो भी भक्त उनकी गालियों को प्रसाद की भाँति मधूर समझते थे। यह नही, उल्टे वे श्री बाबा की ओर आकर्षित होते थे।

श्री बाबा का भक्ति मार्ग की ओर अधिक झुकाव रहता था। वे सभी भक्तों से मुख से नाम स्मरण करने का आग्रह किया करते थे। यदि कोई भी व्यक्ति किसी-न-किसी रूप में परमेश्वर का नाम लेते हुए दिखाई देता तो वे उस बडे प्रेम से अपने निकट बैठाते थे। इस संबंध में शिरडी में आकर शिरडी निवासियों की ही नाक में दम करने वाले एक मुसलमान रोहिला की कहानी अति मनोरंजक है। यह रोहिला शरीर से बडा हृष्ट-पुष्ट, उँचा और एक मस्त भैंसे की भाँति व्यवहार करने वाला था। बैरागी फकीर की भाँति लंबी कफनी पहनकर पवित्र कुरान के कलमें को अपनी भद्दी तथा बेसूरी आवाज में गाते

हुए वह गाँव में भटकता फिरता था। गाँव के गरीब किसान दिनभर खेतों में शारीरिक परिश्रम कर घर आकर जब विश्राम के लिए लेटते थे तो उस दिवाने रोहिला की गर्जना से उनकी नींद हराम होती थी। कुछ दिन तो लोगों ने यह आपत्ति सहन की; परंतु श्री बाबा के ढंग तो न्यारे ही होते थे। उन्होंने उल्टें गाँव वालों को ही डाँटा और खामोश रहने का परामर्श दिया। लोगों को समझाते हुए श्री बाबा ने कहा कि रोहिला की स्त्री बडे उग्र स्वभाव की है और उसे अपने से दूर भागने के उद्देश्य से ही वह जोर-जोर से अल्ला का नाम लेता है। लोग बेचारे श्री बाबा के समझाने से चूप रहे। वास्तव में रोहिला की कोई स्त्री थी नही। सदैव परमेश्वर का नाम-स्मरण कर प्रत्येक मनुष्य को अपने मन के दुष्ट विचार तथा दुबु ‍द्धि दूर भगा देनी चाहिये, यही तत्त्व सिखाने के लिय श्री बाबा ने रोहिला का समर्थन किया था और उसके द्वारा जो असुविधा होती थी, उसे श्री गाँव वालों को सहन करना सिखाया। किसी के भी मुख से निकले हुए परमेश्वर के नाम से श्री बाबा इतने मोहित होते थे। कुछ दिनों के पश्चात वह रोहिला अचानक ही कही चला गया।

श्री बाबा बहुत दूर रहने वाले मनुष्य को भी स्वयं स्फूर्ति से अपनी ओर खींच लेते थे और अनुचित मार्ग से परान्गमुख कर उचित मार्ग पर लाते थे। भगवंतराव क्षीरसागर विठोबा के उपासक थे। उनके पिता पंढरपूर के विठोबा के भक्त थे और 'वारकरी' पंथानुसार वे नित्यनियमपूर्वक पंढरपूर की यात्रा करते थे। उसके घर में भी नित्य पूजा-अर्चना के लिय विठोबा की साँवली मनोहर मूर्ति थी। पिता की मृत्यू के पश्चात भगवंतराव ने अपने कुल की परंपरागत मान-मर्यादा तथा कुलाचार को तिलांजलि दे दी और विठोबा की पूजा करना भी बंद कर दिया। पंढरपूर की यात्रा करना तो उनके लिये दूर की बात थी। एक दिन संयोग से भगवंतराव अपने मित्रों के साथ शिरडी पहुँचेउन्हें देखते ही श्रीसाईनाथ बोले-''देखो, तुम्हारे पिता को तो मै भली-भाँति जानता हूँ। वह मेरे परम मित्र थे। इसीलिये मै तुझे जान-बूझ कर ही

यहाँ खीच लाया। तुझे हो क्या गया है? तू ने घर में साँवले विठ्ठल की पूजा-अर्चना करना ही छोड दिया है। प्रति दिन नैवेद्य भी अर्पण नही करते। परम पवित्र भगवान को और मुझे भुखा रखकर तुम्हारा क्या कभी भी कल्याण हो सकता है? पूर्ण विचार कर अपने मार्ग-भ्रष्ट मन को रास्ते पर ला और अपने पूर्वजों द्वारा निर्धारित कुलाचारों का पालन करना आरम्भ कर। इसी क्षण से मनोभाव से विठ्ठल की पूजा करना आरम्भ कर दे। तुझे कल्याणकारी भक्ति-मार्ग दिखाने के उद्देश्य से ही मैं यहाँ लाया हूँ।'' श्री बाबा की ऐसी अधिकार भरी वाणी से उपदेश करने का फल यह हुआ की क्षीरसागर के मन पर तुरंत अच्छा प्रभाव पडा और वह भक्ति-मार्ग की ओर प्रवृत्त हुआ।

श्री साई महाराज यद्यपि कभी-कभी बहुत क्रोधित दिखाई देते थे, पर उनका अंत:करण बहुत ही सरल था। भक्तों की प्रत्येक भंगिमा और व्यवहार की ओर तथा उनके मन में उत्पन्न होने वाले अच्छे-बुरे विचारों की ओर वे सूक्ष्म दृष्टि से देखते रहते थे। नानासाहेब चाँदोरकर जब नंदुरबार में तहसीलदार थे तो उन्हें पंढरपूर में नियुक्त होने के आज्ञा मिली। श्री नानासाहेब हर्ष-विभार हुए। पंढरपूर तो प्रत्यक्ष विष्णू का वैकुंठ पुर है। वहाँ जानेसे निल श्री. विठ्ठलका दर्शन प्राप्त होगा, इस भावना से उन्होनें तुरंत ही वहाँ जाने की सारी व्यवस्था की। पंढरपुर में अपना तबादला होने की खबर उन्होने किसी को भी नही दी थी। केवल कार्य भार संभालकर पूर्व नियमानुसार श्री बाबा के दर्शनार्थ शिरडी पधारे। नानासाहेब की श्री साई चरणो में इतनी दृढ निष्ठा थी की श्री बाबा को ही वे श्री विठ्ठल मानते थे और शिरडी ही जैसे उनके लिए साक्षात पंढरपूर था। नानासाहेब शिरडी जाने को उद्यत हुए। वे सोच रहे थे कि किसी को भी उनके शिरडी आने का रहस्य ज्ञात नही है। परंतु श्री बाबा ने अंतर्ज्ञान से सब कुछ जान लिया था। नानासाहेब नीमगाँव तक ही पहूँचे थे कि इधर श्री बाबा ने द्वारकामाई में अपनी कारवाई आरम्भ की। म्हालसापति, अप्पा शिंदे, काशिराम आदि लोगों को श्री बाबा ने शीघ्रता से बुला लिया और

संबोधित कर श्री बाबा बोले-'' चलो, आप लोग सब भजन की व्यवस्था करो। आज हम भजन करेंगे। पंढरपूर के द्वार खुले है। आनन्द से विठ्ठल नाम का गायन आरम्भ करो।''

श्री बाबा की आज्ञानुसार भजन आरम्भ हुआ। श्री बाबा स्वयं ही अपने सुरीले मधुर कंठ से भजन करने लगे और उपस्थित लोगों ने ताल-मृदंग आदि के मधुर नाद से उनका साथ दिया। जब सब लोग भजन में मग्न थे तो अचानक नानासाहेब अपने परिवार सहित वहाँ आ पहूँचे। द्वारकामाई में उस समय जो कुछ हो रहा था, उस देखकर वे विस्मित रह गये। नानासाहेब का पंढरपूर जाने का विचार श्री बाबा ने जान लिया था और प्रत्यक्ष श्री विठ्ठल का भजन आरम्भ कर यह सिद्ध किया कि भक्तों के लिए शिरडी पंढरपूर के समान ही है। नानासाहेब गदगद् हो उठे। उस समय श्री बाबा के रूप में उन्हें प्रत्यक्ष श्री विठोबा के दर्शन हुए। श्री बाबा के चरणों में नतमस्तक होकर उन्होंने पंढरपूर जाने के लिए आज्ञा माँगी और श्री बाबा से ऊदी-प्रसाद प्राप्त कर पंढरपूर के लिए प्रस्थान किया।

❋ ❋ ❋ ❋ ❋